आषाढ़-आश्विन, वि.सं. २०८२
जुलाई-सितम्बर, 2025

ISSN : 0378-391X
भाग-86, अंक: 3
यूजीसी केयर लिस्ट में सम्मिलित

हिन्दुस्तानी

त्रैमासिक

शताब्दी की ओर

जयशंकर प्रसाद पर केन्द्रित विशेषांक

हिन्दुस्तानी एकेडेमी उ.प्र. प्रयागराज

अनुक्रम

- सम्पादकीय ... 5
- आलेख
  - जयशंकर प्रसाद का काव्य : संवेदना और दृष्टि – ओमप्रकाश सिंह ... 7
  - राष्ट्रीय गरिमा के गायक जयशंकर प्रसाद – देवशंकर नवीन ... 15
  - प्रसाद-साहित्य : प्राचीन-अर्वाचीन की जानिब से ... – सत्यदेव त्रिपाठी ... 21
  - प्रसाद का कथा-साहित्य और उसका नवीन समाज-दर्शन – श्रीप्रकाश शुक्ल ... 27
  - प्राचीन और अर्वाचीन का द्वन्द्व : सार्थक इतिहास-दृष्टि और नवनिर्माण – श्रद्धानन्द ... 33
  - जयशंकर प्रसाद के नाटकों में राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक चेतना – विनय कुमार सिंह ... 37
  - प्रसाद की कहानियों का समाज-दर्शन – नीरज खरे ... 44
  - जयशंकर प्रसाद का काव्य-चिन्तन शक्तिशाली हो विजयी बनो... – दीपक प्रकाश त्यागी ... 47
  - प्रसाद का नाट्यबोध और उसका सांस्कृतिक अनुवर्तन – राजेश कुमार गर्ग ... 52
  - जयशंकर प्रसाद के साहित्य में राष्ट्रचेतना और मानवतावाद – जी. वसन्ती ... 57
  - जयशंकर प्रसाद के निबन्ध : भारतीय सन्दर्भों की गहन पड़ताल – अमिष वर्मा ... 62
  - प्रसाद कृत 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक में स्त्री-चेतना – गोरखनाथ तिवारी ... 66
  - जयशंकर प्रसाद के साहित्य में नारी – अरुण कुमार वर्मा ... 70
  - जयशंकर प्रसाद की नारी-चेतना : विशेष सन्दर्भ-स्कन्दगुप्त एवं चन्द्रगुप्त नाटक – उमेश दत्त तिवारी ... 73
  - जयशंकर प्रसाद की कहानियों में प्रसाद के दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति का विश्लेषणात्मक अध्ययन – पुष्पा रानी ... 78
  - प्रसाद के कथा-साहित्य में इतिहास, परम्परा और सांस्कृतिक चेतना – सुजीत कुमार सिंह ... 82
  - कामायनी : प्रतीकों का जटिल संयोजन – आशुतोष तिवारी ... 87
  - जयशंकर प्रसाद और हिन्दी नवजागरण – शारदा द्विवेदी ... 91
  - प्रसाद का भारतबोध – अंकिता चौहान ... 94
  - जयशंकर प्रसाद की कहानियों में नवीन समाज-दर्शन – साधना भारती ... 99
  - जयशंकर प्रसाद के साहित्य में नारी का चित्रण – बलजीत कुमार श्रीवास्तव ... 103
  - छायावाद के स्तम्भ जयशंकर प्रसाद – निशा गहलौत ... 109
  - जयशंकर प्रसाद के नाटकों का एतिहासिक परिप्रेक्ष्य – अनूप कुमार ... 112
  - प्रसाद के कथा-साहित्य में स्त्री-विमर्श – संजय कुमार सेठ ... 115
  - प्रसाद की स्त्री-दृष्टि : कहानियों के विशेष सन्दर्भ में – भारती कोरी, मनोज कुमार ... 121

जयशंकर प्रसाद और हिन्दी नवजागरण

शारदा द्विवेदी

हिन्दी-साहित्य में प्रसाद जी का स्थान एक युग-निर्माता कवि, नाटककार और चिन्तक के रूप में अत्यन्त विशिष्ट है। उनका कृतित्व न केवल छायावादी काव्यधारा की उत्कर्षपूर्ण अभिव्यक्ति है, बल्कि नवजागरणकालीन भारत के बौद्धिक और सांस्कृतिक महागाथा का दस्तावेज है। प्रसाद की कृतियों में हम भारतीय आत्मबोध, आधुनिकता, पुनरुथान और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का उत्कर्ष देखते हैं।

हिन्दी-नवजागरण उन्नीसवीं सदी से आरम्भ हुई वह सांस्कृतिक चेतना है, जिसमें भारतीय समाज ने भारतीय ज्ञान-परम्परा के श्रेष्ठ दाय और आधुनिकता के बीच एक रचनात्मक समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया। "प्रसाद जी का साहित्य सच्चे अर्थ में नवीन जीवन से सम्बद्ध है और वह आधुनिक समस्याओं को प्रतिबिम्बित करता है। वह साम्प्रतिक जीवन का उन्नायक है। उनका नाटक-साहित्य, इतिहास और रोमांस के भीतर से नई सांस्कृतिक जागृति में सहायक हुआ है।"[1] प्रसाद ने अपने कालजयी महाकाव्य 'कामायनी' में जलप्रलय के पश्चात आदि-सृष्टि के चरित्रों और उनके अन्तर्विरोधों को अपने युग की समस्याओं से जोड़ते हुए एक नवीन दृष्टि की उद्भावना की है। प्रसाद कामायनी की भूमिका में लिखते हैं- "श्रद्धा और मनु अर्थात् मनन के सहयोग से मानवता का विकास रूपक है, तो भी बड़ा ही भावमय और श्लाघ्य है। यह मनुष्यता का मनोवैज्ञानिक इतिहास बनने में समर्थ हो सकता है। श्रद्धा के साथ मनु का मिलन होने के बाद उसी निर्जन प्रदेश में उजड़ी हुई सृष्टि को फिर से आरम्भ करने का प्रयत्न हुआ, किन्तु असुर पुरोहित के मिल जाने से इन्होंने पशुबलि की। इस यज्ञ के बाद मनु में जो पूर्व परिचित देव-प्रवृत्ति जाग उठी, उसने इड़ा के सम्पर्क में आने पर उन्हें श्रद्धा के अतिरिक्त एक दूसरी ओर प्रेरित किया। इड़ा के लिए मनु को अत्यधिक आकर्षण हुआ और श्रद्धा से वे कुछ खिंचे। ऋग्वेद में इड़ा का कई जगह उल्लेख मिलता है। यह प्रजापति मनु की पथ-प्रदर्शिका, मनुष्यों का शासन करने वाली कही गई है।"[2] कालजयी रचनाकार अपने समय में तो प्रासंगिक होता ही है, आगत भविष्य के संघर्षों का संकेत भी कर देता है। प्रसाद औद्योगिकीकरण की सम्भावित परिणति का कामायनी की भूमिका में संकेत करते हैं- "इड़ा का बुद्धिवाद श्रद्धा और मनु के बीच व्यवधान बनाने में सहायक होता है, फ़िर बुद्धिवाद के विकास में, अधिक सुख की खोज में, दुख मिलना स्वाभाविक है। यह आख्यान इतना प्राचीन है कि इतिहास में रूपक का भी अद्भुत मिश्रण हो गया है। इसीलिए मनु, श्रद्धा और इड़ा इत्यादि अपना ऐतिहासिक अस्तित्व रखते हुए सांकेतिक अर्थ की भी अभिव्यक्ति करें, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं।"[3] प्रसाद का हिन्दी-साहित्य में पदार्पण ऐसे समय में हुआ, जब देश राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक संक्रमण से गुजर रहा था। यह संक्रमण हिन्दी-साहित्य में भाव और भाषा दोनों स्तरों पर हो रहा था। जहाँ साहित्य में एहिकता को बल दिया जा रहा था, वहीं खड़ी बोली काव्य का माध्यम बन रही थी। प्रसाद जी भाव और भाषा दोनों स्तरों पर अपना दायित्व पूरी गम्भीरता से निभाते हैं। "आधुनिककाल में आध्यात्मिकता से एहिकता की ओर झुकाव का एक महत्वपूर्ण साक्ष्य वहाँ मिलता है, जहाँ कवि ईश-वन्दना के बाद मातृभूमि-वन्दना में अधिक रुचि लेने लगते हैं। मैथिलीशरण गुप्त तथा जयशंकर प्रसाद की आरम्भिक कविताएँ प्रमाण स्वरूप देखी जा सकती हैं। जगह-जगह एक मन:स्थिति का संक्रमण दूसरी में होने लगता है। देवी दुर्गा की परिकल्पना माँ के रूप में होती है, और कहा जाता

है कि स्वामी विवेकानन्द ने पहली बार माँ की इस परिकल्पना को भारत माता में ढाला। देशप्रेम एक सहज मानवीय वृति है, जिससे देशभक्ति उपजती है। राष्ट्रीयता के स्थूल रूप का आग्रह आगे सूक्ष्म होकर निथरता है। छायावाद के दौर में प्रसाद और निराला राष्ट्रीयता के राजनैतिक पक्ष की बजाय उसके सांस्कृतिक पक्ष पर अधिक दृष्टि रखते हैं। प्रसाद के विविध 'राष्ट्रगान' तथा निराला का काव्य 'तुलसीदास' इस परिवर्तित दृष्टिकोण के महत्वपूर्ण साक्ष्य हैं। छायावादोत्तर काव्य के विविध रूपों में समग्र सांस्कृतिक चेतना के स्थान पर जनजीवन और उसकी विषमताओं की पहचान तीव्रतर होती है।"[4] जयशंकर प्रसाद का कृतित्व भारतीय ज्ञान-परम्परा से जुड़ता है। भारतेन्दु-युग, द्विवेदी-युग का साहित्य प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से अंग्रेजी और बांग्ला साहित्य के काव्य-आन्दोलन से प्रेरणा ग्रहण करता रहा है और रचनात्मक ऊर्जा पाता रहा है। इस युग के अधिकांश रचनाकारों ने बांग्ला साहित्य और अंग्रेजी साहित्यिक कृतियों के अनुवाद किए। प्रसाद जी इन काव्यान्दोलनों से प्रभावित नहीं होते, बल्कि वह अपने सृजन के लिए बीज और उर्वरता, वैदिक साहित्य से लेकर पुराणों और संस्कृत-महाकाव्यों से लेते हैं। चतुर्वेदी जी लिखते हैं– "जयशंकर प्रसाद शब्द की सभी छायाओं में छायावाद के वरिष्ठ कवि हैं। वे छायावाद के सबसे खाँटी रचनाकार हैं। स्वदेशी भाषा बांग्ला और विदेशी अंग्रेजी के प्रति उनकी उन्मुखता प्रायः नहीं के बराबर है, जो उनके युग में आधुनिक भावबोध की स्वीकृत अग्रणी भाषाएँ थीं। वहाँ से उन्होंने कोई अनुवाद नहीं किये-अनुवाद यों उन्होंने कहीं से भी नहीं किए और न उन्होंने उन साहित्यों को कहीं विशेष चर्चा का विषय बनाया। उनकी रचनाओं में ब्रज और खड़ी बोली से अलग, यदि कोई संस्कार हैं, तो संस्कृत के, और किसी सीमा तक उर्दू के। संस्कृत की प्रेरक-शक्ति का उन्होंने बराबर उपयोग किया है, अपने ढंग से।"[5]

प्रसाद का आदर्श आनन्दवाद की प्रतिष्ठा करना था। वह आनन्दवाद जो सुख-दुःख से ऊपर उठकर था। जहाँ निराशा के लिए कोई स्थान नहीं था। "अपने रचनाकाल के आरम्भ से ही प्रसाद हिन्दू देवमाला के तीन चरित्रों की ओर विशेष रूप से आकृष्ट रहे हैं, वे हैं– इन्द्र, शिव और कृष्ण। इन तीनों चरित्रों की एक साझी विशेषता यह है कि वे जीवन के विविध विरोधी पक्षों को एक साथ समेटे हैं। इन्द्र में योद्धा और संगीत प्रेमी शिव में सबसे बड़े योगी और वैसे ही भोगी, ज्ञानी और भोलानाथ, क्रोधी और आशुतोष, कृष्ण में प्रेमी और कूटनीतिज्ञ और दार्शनिक के परस्पर विरोधी पक्ष ऐसे घुल-मिल गए हैं कि सहसा उनके विरोधत्व का आभास ही नहीं होता। प्रसाद का मानना है कि भारतीय संस्कृति की मूल विचारधारा आनन्द की है, उसमें जब-जब विवेक पर बल दिया गया, तब-तब दुःख का दर्शन बढ़ा है, जिसके प्रतीक हैं–अपने-अपने ढंग से वरुण राम और बुद्ध। आनन्द को रुपायित करने वाले चरित्र हैं–इन्द्र, शिव और कृष्ण।"[6] इस अर्थ में हम प्रसाद को अद्वैत वेदान्त के निकट पाते हैं, जहाँ सारे भेद मिट जाते हैं। "अपने चिन्तन क्रम में प्रसाद में शैवागम और प्रत्यभिज्ञा दर्शन से विशेष प्रेरणा ली, समरसता और आनन्द की उनकी परिकल्पना का स्रोत यहाँ देखा जा सकता है। उनके यहाँ समरसता की प्रक्रिया द्वन्द्व सिद्धान्त से जुड़ी हुई है और आनन्द की भावभूमि तक पहुँचने के लिए इन दोनों क्षेत्रों से होकर गुजरना पड़ता है। शिव के स्वरूप में उन्होंने जीवन की उस विराटता को पहचाना है, जो विरुद्धों के सामंजस्य में से उपजती है। प्रसाद मध्यकालीन निवृत्तिपरक रुझान और सन्यास के आदर्श को सांस्कृतिक प्रवाह में एक विचलन के तौर पर देखते हैं। आधुनिक कविता के विकास में प्रसाद के यहाँ पहली बार देखा जा सकता है कि लौकिक और अलौकिक प्रेम के बीच अन्तर विलीन हो गया है।"[7] प्रसाद सांस्कृतिक नवजागरण के उद्घोषक हैं। उनका व्यक्तित्व भारतीय चिन्ताधारा से पोषण पाता है। "वे द्वन्द्व को मानते हैं, पर द्वन्द्व से समरसता की ओर जाते हैं, जहाँ वेदना या आनन्द से साक्षात्कार करते हैं। द्वन्द्व, समरसता, वेदना, आनन्द-एक ओर यह शब्दावली परम्परागत भारतीय चिन्तनधारा से जुड़ी हुई है, पर दूसरी ओर प्रसाद उनमें अर्थ का आविष्कार अपने रचनात्मक सन्दर्भ में करते हैं। कामायनी का श्रद्धा-सर्ग एक प्रकार से उनकी दार्शनिक मान्यताओं का प्रारूप है। दुःख के भय से संसार से विरत नहीं हो जाना चाहिए। यह दृष्टिकोण उपस्थित करते हुए श्रद्धा मनु को समझाती हैं–

विषमता की पीड़ा से व्यस्त,
हो रहा है स्पंदित विश्व महान।
यही दुख सुख विकास का सत्य,
यही भूमा का मधुमय दान।।

विषमता और सुख-दुख का द्वन्द्व विकास का मूलाधार है।"[8]

प्रसाद की सर्जनात्मकता का प्रतिनिधि, 'कामायनी' महाकाव्य को कहा जाता है। कामायनी की कलात्मक दृष्टिकोण से मूल्यांकन करने वाले मुक्तिबोध की कृति 'कामायनी एक पुनर्विचार' के बारे में डॉ नामवर सिंह लिखते हैं– "कामायनी का द्वन्द्व, मार्क्सवाद की द्वन्द्वात्मकता नहीं, बल्कि इसका सम्बन्ध भाववाद से है। कामायनी कवि के दीर्घ संचित भावों और विचारों के ऊहापोह के दौरान क्रमशः रूप धारण करती हुई एक आत्मपरक 'फैंटेसी' है, जिसमें समकालीन जीवन की कलात्मक पुनर्रचना की गई है।"[8] कामायनी मात्र एक कथा नहीं है, बल्कि भारतीय संस्कृति की विकास-यात्रा है। संस्कृति की अति भौतिकता से उत्पन्न समस्याएं और उसका समाधान प्रस्तुत किया गया है। "संस्कृति के विकास में कवि दिखाता है कि मनुष्य मृगया-युग और कृषि-युग को पार करता हुआ वर्तमान यान्त्रिकी युग में आन पहुँचा है और इस यान्त्रिकी युग के क्या खतरे हैं तथा उनका अतिक्रमण कैसे सम्भव है। श्रद्धा से मिलने से पूर्व मनु मृगया-युग में जीवन-यापन कर रहे हैं, श्रद्धा की आत्मीयता कृषि-युग के साथ है, जबकि इड़ा यान्त्रिकी युग की अधिष्ठात्री है, जो जितनी समस्याओं का हल करती है, उससे कहीं अधिक उत्पन्न करती है। सभ्यता के विकास के साथ-साथ मनुष्य के अन्तःकरण का विकास भी कामायनी में चित्रित हुआ है। आदिम प्रभुत्व और एकान्त आधिपत्य की भावना से भरा हुआ मनुष्य का अन्तःकरण कैसे इर्ष्याग्रस्त होता है और फिर धीमे-धीमे मनु का अहम भाव, श्रद्धा के साहचर्य में प्रेम की महिमा सीखता है। कर्म-सर्ग में श्रद्धा मनु को समझाती हैं–

अपने में सब कुछ भर कैसे व्यक्ति विकास करेगा ?
यह एकान्त स्वार्थ भीषण है अपना नाश करेगा
औरों को हँसते देखा मनु हँसो और सुख पाओ,
अपने सुख को विस्तृत कर लो सबको सुखी बनाओ।"[9]

प्रसाद का मानव संस्कृति पर अटूट विश्वास उसकी तमाम सीमाओं के बावजूद देव संस्कृति के ऊपर इक्कीस ठहराता है। "प्रसाद ने बड़ी निष्ठा के साथ प्रदर्शित किया है कि इन नए मान मूल्यों के आधार पर विकसित मानवीय संस्कृति देव संस्कृति की तुलना में किसी तरह हीन नहीं, वरन वह देव संस्कृति जो भौतिकवादी, सुख केवल सुख की संस्कृति है, उससे आगे का विकसित सूक्ष्म और उन्नत रूप है। इस माने में कवि ने मध्यकालीन हीन भावना से ग्रस्त देवता प्रधान को नए और आधुनिक मानवीय आत्मविश्वास से सम्पन्न किया है।"[10]

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रसाद ने नवजागरण को अपनी रचनाओं से समृद्ध किया है। प्रसाद के काव्य को चतुर्वेदी जी ने सही अर्थों में शक्ति-काव्य और युग-काव्य कहा है।

सन्दर्भ :

1. जयशंकर प्रसाद, नन्ददुलारे बाजपेयी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण-2013, पृष्ठ 8.
2. कामायनी, जयशंकर प्रसाद, भारती भण्डार, लीडर प्रेस इलाहाबाद, संस्करण, संवत 2026, भूमिका, पृष्ठ 4-6.
3. वही, पृष्ठ 7-8 .
4. प्रसाद निराला अज्ञेय, रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद संस्करण-2005, पृष्ठ 4-5.
5. वही, पृष्ठ 21
6. वही, पृष्ठ 25-26
7. वही, पृष्ठ 27
8. कविता के नए प्रतिमान, नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2021, पृष्ठ 79
9. प्रसाद निराला अज्ञेय, रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृष्ठ 38-39
10. वही, पृष्ठ 39.

डॉ. शारदा द्विवेदी
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी-विभाग
रानी भाग्यवती देवी महिला महाविद्यालय बिजनौर
मोबाइल नम्बर-6387045826

■